जैन दार्शनिक साहित्य में ज्ञान और प्रमाण के समन्वय का प्रश्न

कानजी भाई पटेल

अनुयोगद्वार-सूत्र (सङ्कलन लगभग ५वीं शताब्दी) के सूत्र ५ में सूत्रकार ने आवश्यक का अनुयोग प्रस्तुत करने की बात कही है। अतः ऐसा लगता है कि इस सूत्र में आवश्यक की व्याख्या होगी। परन्तु समग्र ग्रन्थ के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि अनुयोगद्वार-सूत्र पदार्थ की व्याख्या-पद्धति का निरूपण करने वाला ग्रन्थ है। नाम के अनुसार उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय इन चार द्वारों का निरूपण इसमें हुआ है। आवश्यक-सूत्र के पदों की व्याख्या इसमें नहीं हुई है।

आवश्यकानुयोग के सन्दर्भ में सूत्रकार ने प्रथमतः आभिनिबोधिक आदि पाँच ज्ञान का निरूपण कर अनुयोग के लिये श्रुतज्ञान ही योग्य है, ऐसा कहकर उसका महत्त्व प्रदर्शित किया है। श्रुतज्ञान के ही उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा और अनुयोग हो सकते हैं, जबकि शेष चार ज्ञान असंव्यवहार्य हैं। परोपदेश के लिये अयोग्य होने से इन चार के माध्यम से अनुयोग होना सम्भव नहीं है। उक्त चार ज्ञानों के स्वरूप का वर्णन भी श्रुतज्ञान द्वारा ही होता है। इस प्रकार ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही अङ्गप्रविष्ट, अङ्गबाह्य, कालिक, उत्कालिक, आवश्यक और आवश्यक-व्यतिरिक्त में आवश्यक का स्थान कहाँ है, यह बताने के लिये आभिनिबोधिक, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर सूत्र ४६६ से ४७० तक में ज्ञान-प्रमाण के विवेचन में ज्ञान के प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम इस प्रकार चार भेद बताये हैं।

ज्ञान-प्रमाण की विवेचना में अनुयोगद्वार-सूत्रकार को पाँच ज्ञानों को ही प्रमाण के भेदों के रूप में बताना चाहिये था, किन्तु ऐसा न करके सूत्रकार ने प्रथम तो नैयायिकों में प्रसिद्ध चार प्रमाणों को ही प्रमाण के भेद के रूप में बताया है। तत्पश्चात् पाँच ज्ञानों को प्रत्यक्ष और आगम—इन दो प्रमाणों में समाविष्ट किया है। वस्तुतः अनुयोगद्वार-सूत्रकार का यह अभिमत रहा है कि अन्य दार्शनिक जिन प्रत्यक्षादि चार प्रमाणों को मानते हैं, वे ज्ञानात्मक हैं, आत्मा के गुण हैं।

अनुयोगद्वार-सूत्र में इन पाँच ज्ञानों के स्वरूपों की चर्चा नन्दी-सूत्र की भाँति प्रत्यक्ष एवं परोक्ष के रूप में विभाजन करके नहीं की गई है। वस्तुतः अनुयोगद्वार-सूत्र में ज्ञान के स्वरूप की चर्चा सबसे निराली है। आगमों में ज्ञान के स्वरूप की चर्चा के विकास की जो तीन भूमिकाएँ हैं, इनमें से एक भी अनुयोगद्वार-सूत्र में देखने को नहीं मिलती है।

ज्ञान के स्वरूप की चर्चा का विकासक्रम—ज्ञान के स्वरूप की चर्चा के विकास-क्रम को आगमों के ही आधार पर देखें, तो उसकी तीन भूमिकाएँ स्पष्ट हैं, यथा—

१. प्रथम भूमिका वह, जिसमें ज्ञान को पाँच भेदों में विभक्त किया गया है।

२. द्वितीय भूमिका में ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष—ऐसे दो विभाग कर मति एवं श्रुत को परोक्ष तथा शेष तीन—अवधि, मनःपर्याय एवं केवलज्ञान को प्रत्यक्षज्ञान के अन्तर्गत माना गया है। यहाँ अन्य दर्शनों की तरह इन्द्रियजन्य मतिज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं माना गया है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो ज्ञान आत्मा के अतिरिक्त अन्य साधनों की अपेक्षा रखता है, उसका जैन सिद्धान्तानुसार परोक्षज्ञान में समावेश किया गया है।

३. इन्द्रियजन्य ज्ञानों को प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों में स्थान दिया गया है। यह तृतीय भूमिका है।

इन तीन भूमिकाओं में से किसी भी एक का अनुसरण अनुयोगद्वार में नहीं किया गया है, तथापि वह तीसरी भूमिका के अधिक निकट है। प्रथम प्रकार का वर्णन हमें भगवतीसूत्र में (८८-२-३१७) मिलता है, जिसमें ज्ञान के पाँच भेद कर आभिनिबोधिक के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा—ये चार भेद बताये गये हैं। स्थानाङ्ग में ज्ञान के स्वरूप की चर्चा द्वितीय भूमिका के अनुसार है। उसमें ज्ञान के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष—ऐसे दो भेद कर उनमें पाँच ज्ञानों की योजना की गई है। निम्न तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है, इसमें ज्ञान के मुख्य दो भेद किये गये हैं, पाँच नहीं। मुख्य दो भेदों में ही पाँच ज्ञानों का समावेश किया गया है। यह स्पष्टतः प्रथम भूमिका का विकास है। पं० दलसुखभाई मालवणिया के मतानुसार इस भूमिका के आधार पर उमास्वाति ने प्रमाणों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष—ऐसे दो भेदों में विभक्त कर, उन्हीं दो में पाँच ज्ञानों का समावेश किया है।

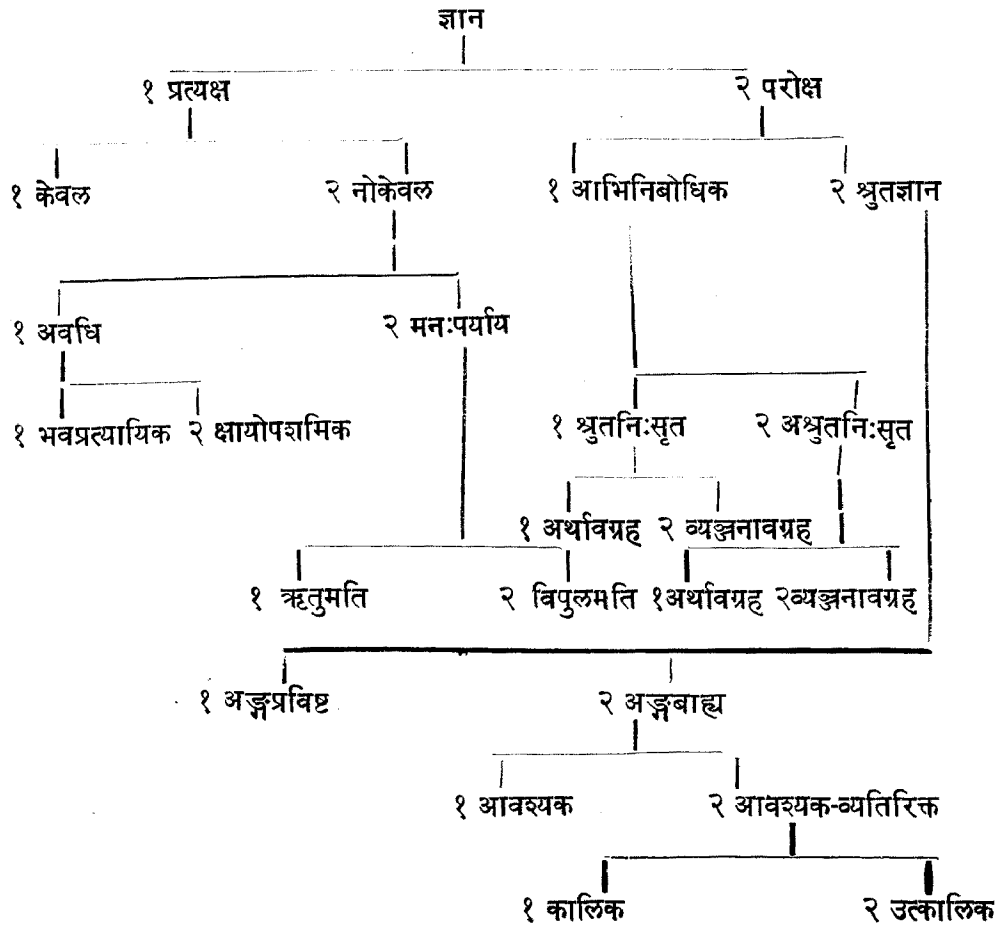

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नन्दीसूत्र में ज्ञानचर्चा की तृतीय भूमिका व्यक्त होती है, जो इस प्रकार है—

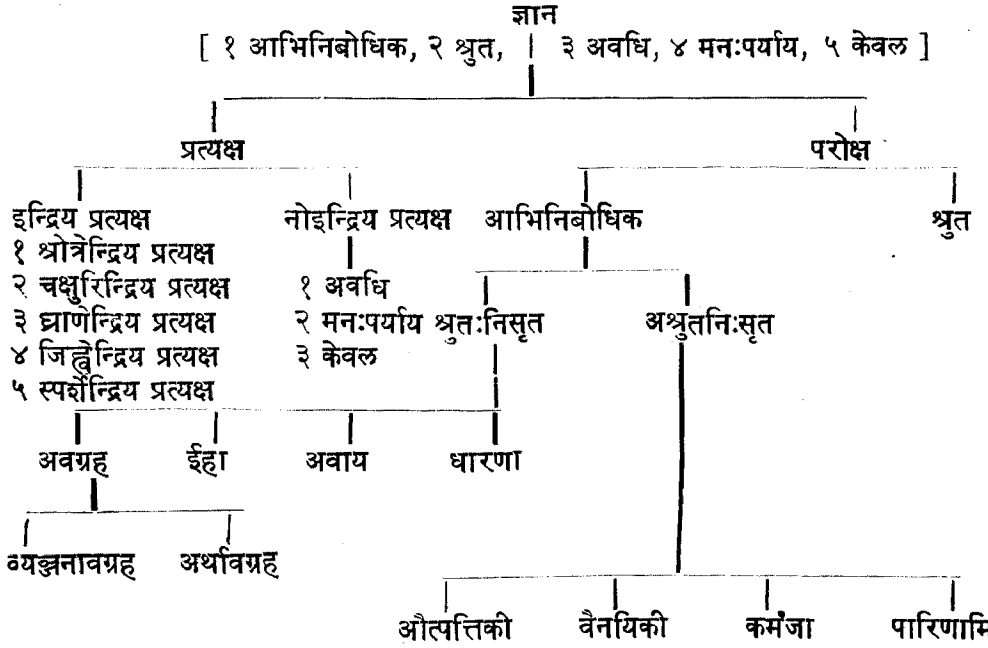

प्रस्तुत तालिका से स्पष्ट है कि नन्दीसूत्र में प्रथम तो ज्ञान के पाँच भेद किये गये हैं। पुनः उनको प्रत्यक्ष और परोक्ष—ऐसे दो भेदों में वर्गीकृत किया गया है। स्थानाङ्ग से इसकी विशेषता यह है कि इसमें इन्द्रियजन्य मतिज्ञान का स्थान प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों में है। जैनेतर सभी दर्शनों में इन्द्रियजन्य ज्ञान को परोक्ष नहीं, अपितु प्रत्यक्ष माना गया है। इस लौकिक मत का नन्दीसूत्रकार ने समन्वय किया है। आचार्य जिनभद्र ने इन दोनों का समन्वय कर यह स्पष्ट किया है कि इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष को सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष कहना चाहिए अर्थात् लोकव्यवहार के आधार पर इन्द्रियजन्य मतिज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहा गया है। वस्तुतः वह परोक्ष ज्ञान ही है। प्रत्यक्ष ज्ञान तो अवधि, मनःपर्याय तथा केवल ज्ञान ही है। आचार्य अकलङ्क और उनके परवर्ती जैनाचार्यों ने ज्ञान के सांव्यावहारिक और पारमार्थिक—ऐसे दो भेद किये हैं, जो मौलिक नहीं हैं, परन्तु उनका आधार नन्दीसूत्र और जिनभद्रकृत स्पष्टीकरण है।

इस प्रकार अनुयोगद्वार-सूत्र की ज्ञान के स्वरूप की चर्चा नन्दी-ज्ञान-सम्मत-चर्चा से भिन्न है। इसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष—ऐसे दो भेद नहीं अपितु प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम—इन चार भेदों की चर्चा मिलती है। यहाँ प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेद किये गये हैं—इन्द्रिय-प्रत्यक्ष और नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष। इन्द्रिय-प्रत्यक्ष में नन्दी की भाँति ही श्रोत्रेन्द्रिय-प्रत्यक्ष इत्यादि पाँच ज्ञानों का समावेश होता है और नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष में अवधिज्ञान, मनःपर्याय और केवल-ज्ञान को समाविष्ट किया गया है। श्रुत को आगम में रखा है। नन्दी-सूत्र और अनुयोगद्वार में मुख्य अन्तर यह है कि नन्दी-सूत्र में श्रोत्रेन्द्रिय आदि को सिर्फ प्रत्यक्ष माना है और उसमें पाँच ज्ञान तथा दो प्रमाणों का लगभग समन्वय हो जाता है, जबकि अनुयोगद्वार-सूत्र में अनुमान और उपमान को कौन सा ज्ञान कहना, यह एक प्रश्न रहता है। निम्न तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

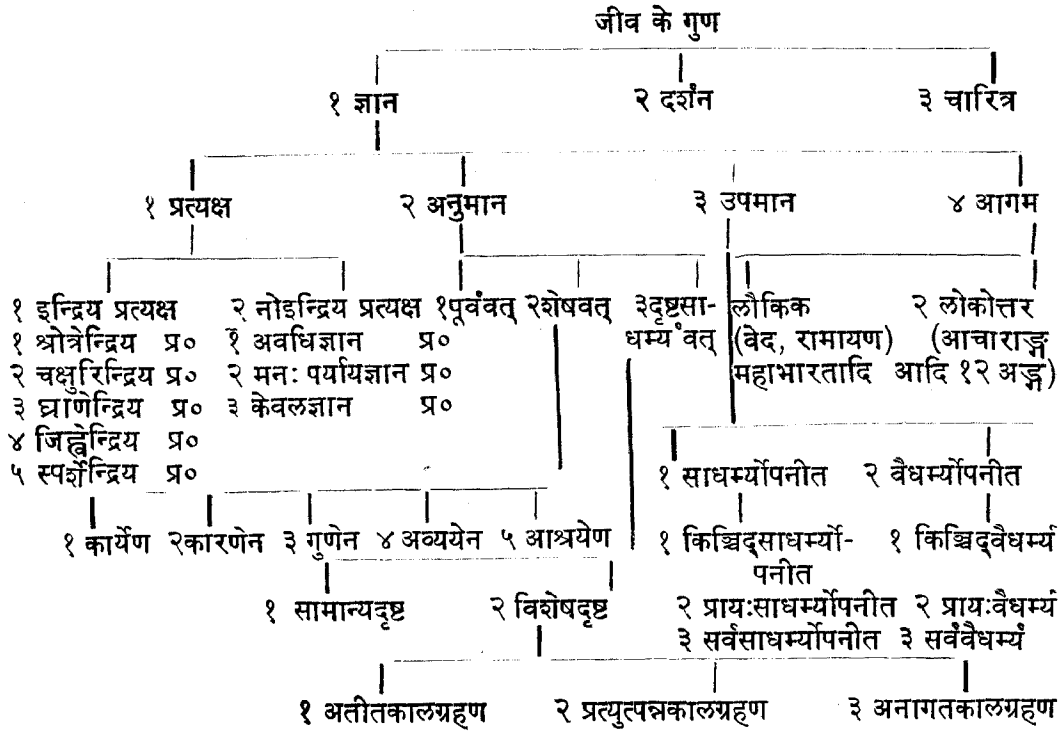

ज्ञान-चर्चा की आगमिक और तार्किक पद्धतियाँ—ज्ञान-चर्चा की उपर्युक्त तीन भूमिकाओं में से पहली आगमिक और अन्य दो तार्किक पद्धतियाँ हैं। ज्ञान के मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्याय तथा केवलज्ञान—ऐसे पाँच भेद करने की पद्धति को दो कारणों से आगमिक कहा गया है, यथा—

१. इसमें किसी भी जैनेतर दर्शन में प्रयुक्त नहीं हुए ऐसे पाँच ज्ञानों का निरूपण हुआ है।

२. जैनश्रुत में कर्मप्रकृतियों का जो वर्गीकरण है, उसमें ज्ञानावरणीय कर्म के विभाग के रूप में मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय और केवलज्ञानावरणीय—ऐसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। प्रत्यक्षावरण, परोक्षावरण, अनुमानावरण, उपमानावरण, आगमावरण आदि शब्दों का प्रयोग देखने को नहीं मिलता।

ज्ञान प्रमाण के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष—ये दो भेद तथा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम आदि चार भेद करने की पद्धति को तार्किक पद्धति कहने के पीछे भी दो कारण हैं—

१. उसमें प्रायोजित प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान आदि शब्द न्याय, बौद्ध आदि जैनेतर दर्शनों में भी प्रचलित हैं।

२. प्रत्यक्ष, परोक्ष इत्यादि रूप में ज्ञान-वृत्ति का पृथक्करण करने में तर्कदृष्टि प्रधान है।

मूल आगमों से लेकर उपाध्याय यशोविजयजी के ग्रन्थों तक ज्ञान-निरूपण-विषयक समग्र श्वेताम्बर, दिगम्बर वाङ्मय में आगमिक एवं तार्किक दोनों पद्धतियों को स्वीकार किया गया है।

इन दोनों में आगमिक पद्धति अति प्राचीन लगती है, यद्यपि दूसरी तार्किक पद्धति भी जैन वाङ्मय में प्राचीन काल से अस्तित्व में है। परन्तु दार्शनिक सङ्घर्ष तथा तर्कशास्त्र के परिशीलन के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिणामस्वरूप ही उसे योग्य रूप में स्थान मिला है, ऐसा प्रतीत होता है। मूल आगमों में से भगवतीसूत्र में आगमिक पद्धति की, स्थानाङ्ग में तार्किक पद्धति के दोनों प्रकारों की, नन्दी में द्विभेदी तार्किक पद्धति की और अनुयोगद्वार में चतुर्विध तार्किक पद्धति की चर्चा है। किन्तु नन्दी और अनुयोगद्वार की पद्धति को तर्कमिश्रित आगमिक ज्ञान-पद्धति कहना चाहिए। क्योंकि प्रत्यक्ष के व्यावहारिक और पारमार्थिक भेदों के प्रथम भेद में मतिज्ञान को रखकर तथा दूसरे विभाग में अवधि, मनःपर्याय एवं केवलज्ञान को और परोक्षज्ञान में स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, आगम आदि को रख कर एक शुद्ध तार्किक पद्धति का विनियोग किया जा सकता है।

ज्ञान एवं प्रमाण के समन्वय का अभाव

मूल आगमों में आगमिक एवं तार्किक इन दोनों पद्धतियों से समग्र ज्ञान-वृत्ति का निरूपण हुआ है, तथापि इन दो पद्धतियों का परस्पर समन्वय हुआ दिखाई नहीं देता। भद्रबाहुकृत दशवैकालिक निर्युक्ति के प्रथम अध्ययन में न्याय-प्रसिद्ध परार्थ-अनुमान का वर्णन जैन दृष्टि से किया गया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि निर्युक्तिकार के पूर्व तार्किक पद्धति जैनशास्त्र में स्थान प्राप्त कर चुकी होगी, तथापि निर्युक्ति तक में इन दो पद्धतियों का समन्वय देखने को नहीं मिलता। जैन आगमिक आचार्यों ने प्रमाण-चर्चा को ज्ञान-चर्चा से भिन्न रखा है। आगमों में जहाँ ज्ञान की चर्चा आती है, वहाँ प्रमाण अप्रमाण के साथ ज्ञान का सम्बन्ध बताने का प्रयास नहीं हुआ है और जहाँ ज्ञान की चर्चा हुई है, वहाँ प्रमाण को ज्ञान कहने पर भी प्रमाण में आगम प्रसिद्ध पाँच ज्ञानों का समावेश और समन्वय कैसे हुआ, यह नहीं बताया गया अर्थात् आगमिकों ने जैनशास्त्र में प्रसिद्ध ज्ञान-चर्चा और दर्शनान्तर में प्रसिद्ध प्रमाण-चर्चा का समन्वय करने का प्रयत्न नहीं किया है।

अनुयोग और नन्दी में ज्ञान एवं प्रमाण के समन्वय का अस्पष्ट सूचन

अनुयोगद्वार में इन दो पद्धतियों के समन्वय का सङ्केत मिलता है। नन्दीसूत्र में भी ऐसा प्रयत्न दिखाई देता है, तथापि दोनों की पद्धतियाँ भिन्न हैं। अनुयोगद्वार में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम—इन चार प्रमाणों के उल्लेख के साथ प्रथम भूमिका निश्चित की गयी है।

पूर्व प्रस्तुत तालिका में प्रत्यक्ष ज्ञान-प्रमाण के दो भेद किये गये हैं, यथा—इन्द्रिय-प्रत्यक्ष एवं नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष। इन्द्रिय-प्रत्यक्ष में श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिह्वेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय—इन पाँच प्रकार के प्रत्यक्षों का समावेश हुआ है। उसी प्रकार नोइन्द्रिय-प्रत्यक्ष प्रमाण में जैनशास्त्र-प्रसिद्ध तीन प्रत्यक्षों का समावेश हुआ है—अवधिज्ञान प्रत्यक्ष, मनःपर्यायज्ञान प्रत्यक्ष और केवलज्ञान प्रत्यक्ष। इस प्रकार यहाँ प्रत्यक्ष के दो विभागों में से एक विभाग में मतिज्ञान को प्रत्यक्ष मान्य रखा है और दूसरे विभाग में अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है। श्रुतज्ञान को आगम में रखा है।

नन्दीसूत्र में भी अनुयोगद्वार की तरह ही समन्वय का प्रयत्न हुआ है। परन्तु उसकी पद्धति अलग है। उसमें प्रमाण के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष—ऐसे दो भेद बताये हैं। पुनः प्रत्यक्ष को दो उपविभागों में विभाजित कर, प्रथम विभाग में श्रोत्रेन्द्रिय आदि मतिज्ञान के पाँच प्रकारों को और दूसरे विभाग में अवधि आदि तीन ज्ञानों को वर्गीकृत किया है; परन्तु आगे जहाँ परोक्ष के भेदों का वर्णन हुआ है, वहाँ नन्दीकार ने श्रुतज्ञान के साथ-साथ मतिज्ञान (आभिनिबोधिक) का भी परोक्ष प्रमाण के रूप में वर्णन किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार जहाँ अनुयोगद्वारसूत्र में चतुर्विध प्रमाण और पाँच ज्ञान का समन्वय हुआ है, वहीं नन्दीसूत्र में द्विविध प्रमाण एवं पाँच ज्ञान का समन्वय हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। जैन परम्परानुसार इन्द्रियजन्य ज्ञान, परोक्ष ज्ञान कहा जाता है। जैनेतर अन्य दर्शनों ने इन्द्रियजन्य ज्ञान को परोक्ष नहीं, अपितु प्रत्यक्ष माना है। इस लौकिक मतानुसरण द्वारा अनुयोगद्वार तथा नन्दीसूत्र में मतिज्ञान (इन्द्रियजन्य मतिज्ञान) को प्रत्यक्ष के एक भाग के रूप में वर्णित करके लोकमान्यता को स्वीकृति दी गई तथा अन्यान्य दर्शनों से विरोध-भाव भी कम हुआ, परन्तु इससे प्रमाण एवं ज्ञान के समन्वय का विचार स्पष्ट और असन्दिग्ध न हुआ। लौकिक और आगमिक विचार का समन्वय करते समय अनुयोगद्वार में मतिज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहा गया (जिसको परवर्ती प्रमाण-मीमांसकों ने सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष कहा है)। श्रुतज्ञान को आगम में रखा और अवधिज्ञान, मनःपर्याय तथा केवलज्ञान को पुनः प्रत्यक्ष प्रमाण कहा। परन्तु मनोजन्य मतिज्ञान को कौन-सा प्रमाण कहना तथा प्रमाण-पक्ष की दृष्टि से अनुमान और उपमान को कौन से ज्ञान कहना, यह बात स्पष्ट नहीं हुई। यह बात निम्न समीकरण से स्वयं स्पष्ट है—

ज्ञान		प्रमाण
१. (अ) इन्द्रियजन्यमतिज्ञान	=	प्रत्यक्ष
(ब) मनोजन्यमतिज्ञान	=	?
२. श्रुत	=	आगम
३. अवधि |		
४. मनःपर्याय |	=	प्रत्यक्ष
५. केवल |		
?	=	अनुमान
?	=	आगम

पूर्ण समन्वय कैसे हो ?

न्यायशास्त्रानुसार मानस-ज्ञान के दो प्रकार हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। सुख-दुःखादि विषयों से सम्बन्धित मानसज्ञान प्रत्यक्ष तथा अनुमान, उपमानादि से सम्बन्धित मानसज्ञान परोक्ष कहा जाता है। अतः मनोजन्यमतिज्ञान, जो जैन मतानुसार परोक्ष है, में अनुमान और उपमान को समाहित कर लेना अधिक समीचीन है। ऐसा करने से पाँच ज्ञान और चार प्रमाणों का समन्वय हो जाता है। परन्तु अनुयोगद्वार के रचयिता यहाँ एक कदम पीछे रहे हैं। नन्दीकार ने उसका सङ्केत तो दे दिया है, परन्तु वह इतना स्पष्ट नहीं है। मतिज्ञान को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष इन दोनों में गिनाया है। वस्तुतः इन्द्रियजन्यमतिज्ञान को प्रत्यक्ष में और मानसमतिज्ञान को परोक्ष में गिना जाय तो विवाद ही समाप्त हो जाये। वास्तव में अनुमान आदि मानसज्ञान परोक्ष ही हैं, परन्तु इन्द्रियजन्यमतिज्ञान को प्रत्यक्ष कहना तो लौकिक मान्यता का अनुसरण ही है।

प्रमाण और पञ्चविध ज्ञान का समन्वय

जैनदृष्टि से प्रमाण और पाँच ज्ञानों की अवधारणा में स्पष्ट समन्वय करने का प्रयत्न उमास्वाति ने किया है। ज्ञान के मति, श्रुत आदि पाँच भेद बताकर तार्किक पद्धति की दृष्टि से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने प्रथम दो ज्ञानों को परोक्ष और शेष तीन को प्रत्यक्ष कहा है। यद्यपि उन्होंने अपने तत्त्वार्थ-भाष्य में 'चतुर्थविधमित्यके' कहकर चार प्रमाणों का अभिमत दिया है। परन्तु जिस प्रकार पाँच ज्ञान को परोक्ष एवं प्रत्यक्ष—इन दो प्रमाण-भेदों में सूत्र द्वारा माना गया है, उसी प्रकार इन पाँच ज्ञान को प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और आगम—इन चार प्रमाणों में नहीं माना गया है। भाष्य में भी इसका उल्लेख नहीं है। इसका कारण यह हो सकता है कि प्रमाण के दो भेदों की प्रथम प्रकार की तार्किक पद्धति ही जैन दर्शन को विशेष अनुकूल है। चार प्रमाणों की दूसरी तार्किक पद्धति आगम में निर्दिष्ट होने पर भी मूलतः यह दूसरे दर्शनों की है। तत्त्वार्थसूत्र की तरह आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार के प्रथम प्रकरण में मति और श्रुत को परोक्ष तथा अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान को प्रत्यक्ष रूप में वर्णित किया है।

इस प्रकार आगमिक और तार्किक पद्धति के द्विविध प्रमाण का समन्वय हुआ है, परन्तु चतुर्विध वर्गीकरण का दूसरा प्रश्न अनुत्तरित ही रहता है। जैनेतर दार्शनिक विद्वान् इन्द्रियजन्य मतिज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं, जबकि जैन विद्वान् मति एवं श्रुत दोनों को परोक्ष कहते हैं। इसका पूर्णतः समाधान न तो उमास्वाति और कुन्दकुन्द ने ही किया और न नन्दीसूत्रकार और अनुयोग-द्वार-सूत्रकार ने ही किया। इस बात का स्पष्ट निराकरण परवर्ती श्वेताम्बर आचार्यों में सर्वप्रथम जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण और दिगम्बर आचार्यों में भट्टारक अकलङ्क ने किया है। क्षमाश्रमण ने अपने विशेषावश्यक में उक्त प्रश्न का निराकरण करते हुए कहा है कि इन्द्रियजन्य मतिज्ञान, जो प्रत्यक्ष कहा गया है, उसे सांव्यावहारिक-प्रत्यक्ष समझना चाहिए। भट्टारक अकलङ्क ने अपनी लघीयस्त्रयी में स्पष्टतः उल्लेख किया है कि प्रत्यक्ष के मुख्य और सांव्यावहारिक—ऐसे दो भेद हैं। उसमें अवधि आदि तीन ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष और इन्द्रियजन्य मतिज्ञान को सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष समझना चाहिए। दोनों के कथन का स्पष्ट आशय यही है कि जैन दर्शन ने तात्त्विक दृष्टि से अवधि, मनःपर्याय और केवल—इन तीन ज्ञान को प्रत्यक्षरूप में माना है। मति और श्रुत वस्तुतः परोक्ष होने पर भी उनमें इन्द्रियजन्य मतिज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है पर यह तात्त्विक दृष्टि से नहीं, इसमें लोकव्यवहार की स्थूल दृष्टि ही है। तात्त्विक दृष्टि से तो, यह ज्ञान श्रुतज्ञान की तरह परोक्ष ही है। इन दोनों आचार्यों का यह स्पष्टीकरण इतना असन्दिग्ध है कि आज तक के परवर्ती किसी ग्रन्थकार ने उसमें संशोधन या परिवर्धन करने की आवश्यकता नहीं समझी।

क्षमाश्रमण के बाद प्रस्तुत विषय के श्वेताम्बर अधिकारी विद्वानों में चार आचार्य उल्लेखनीय हैं—जिनेश्वर, वादिदेवसूरि, आचार्य हेमचन्द्र और उपाध्याय यशोविजय। भट्टारक अकलङ्क के पश्चात् दिगम्बर आचार्यों में माणिक्यनन्दि, विद्यानन्दि आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दोनों ही सम्प्रदायों के इन आचार्यों ने अपनी-अपनी प्रमाणमीमांसा-विषयक कृतियों में बिना किसी परिवर्तन के लगभग एक ही प्रकार से अकलङ्ककृत शब्द-योजना पर ही ज्ञान का वर्गीकरण स्वीकार किया है। इन सभी ने प्रत्यक्ष के मुख्य और सांव्यावहारिक, यह दो भेद किये हैं। मुख्य में अवधि, मनःपर्याय और केवलज्ञान को और सांव्यावहारिक में मतिज्ञान को लिया है। परोक्ष के स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम इन पाँच भेदों में प्रत्यक्ष को छोड़कर सभी प्रकार के ज्ञान के भेदोपभेदों को समाहित कर लिया है। इस प्रकार ज्ञान एवं प्रमाण का सम्पूर्ण समन्वय सिद्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

१. दलसुखभाई मालवणिया–आगमयुग का जैनदर्शन, सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा
२. सिद्धसेन–सन्मति प्रकरण–पं० सुखलालजी, ज्ञानोदय ट्रस्ट
३. सिद्धसेन–न्यायावतार, प्रस्तावना–पं० सुखलालजी
४. उमास्वाति–तत्त्वार्थसूत्र–पं० सुखलालजी, जैन साहित्य प्रकाशन समिति, अहमदाबाद
५. पं० अमृतलाल भोजक–अनुयोगद्वारसूत्र, महावीर जैन विद्यालय
६. अमोलक ऋषि–नन्दिसूत्र, सुखदेव सहाय ज्वाला प्रसाद जौहरी, हैदराबाद
७. कुन्दकुन्दाचार्य–प्रवचनसार, श्रीमद् राजचन्द्र ग्रन्थमाला
८. जैनभद्रक्षमाश्रमण–विशेषावश्यकभाष्य, ला० द० ग्रन्थमाला
९. यशोविजयजी–जैन तर्कभाषा–सिन्धी जैन ग्रन्थमाला
१०. अकलङ्क–अकलङ्कग्रन्थत्रय–सिन्धी जैन ग्रन्थमाला
११. अकलङ्क–तत्त्वार्थवार्तिक भाग–१-२, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी
१२. माणिक्यनन्दि–परीक्षामुख, पं० घनश्यामदास जैन, स्या० म०, काशी
१३. विद्यानन्दि–प्रमाणपरीक्षा, सनातन जैन ग्रन्थमाला
१४. कणाद–वैशेषिकदर्शन, चौखम्बा सं० सी०
१५. देवसूरि–प्रमाणनयनतत्त्वालोक, अर्हत्मत प्रभाकर कार्यालय, पूना
१६. अक्षपाद–न्यायसूत्र, चौखम्बा सं० सी०
१७. अमोलकऋषि–भगवतीसूत्र, सुखदेव सहाय ज्वाला प्रसाद जौहरी, हैदराबाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org